साम्ययोग

[१९५५–५८ तक "भूदानयज्ञ" में प्रकाशित साम्यवाद
एवं साम्ययोग विषयक लेख]

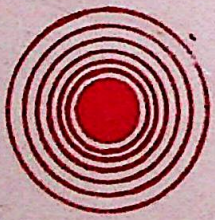

—विमला—

9.2

प्रस्तावना

विज्ञान का जो विकास हो रहा है, उसके कारण मानव-समाज दुःख, दारिद्र्य और भुखमरी में से मुक्त होगा, अकाल मृत्यु तथा व्याधि के शाप में से मुक्त होगा, ऐसी एक श्रद्धा पिछले दो सौ वर्षों से मानव जीवन की साधना का आधार बनी हुई है।

न्याय एवं समतापूर्वक यदि पुनः समाज-रचना हो सकी तो मानव आर्थिक शोषण में से मुक्ति पायेगा, और सैकड़ों वर्षों से धर्म के नाम पर जो अन्धी रूढ़ियों का बोलबाला चल रहा है उसका अन्त आयेगा। समाज रचना ऐसी होगी कि उससे मानवता विकास पायेगी। यही श्रद्धा आधुनिक युग के तपस्वी क्रान्तिकारियों में जीवन का कायमी आधार बनी हुई है।

अणु-विस्फोट-युद्ध में ये दोनों श्रद्धायें बलि हो जायेंगी ऐसी विकराल आशंका क्रियाशील मनुष्य को बेचैन कर रही है।

द्वेष की भावना मानव-समाज को अणु-युद्ध की श्मशान भूमि पर ढकेल देगी। मानव के हृदय में धधक उठी उस द्वेषभावना की आग को क्या विज्ञान ठण्डी कर सकेगा ?

क्या साम्यवाद विश्व-युद्ध के सिवा का दूसरा कोई विकास का मार्ग खोज सकेगा ?

किसी भी देश में बचा विवेकशील मानव इसी प्रश्न का चिन्तन, मनन और संशोधन कर रहा है। इस दिशा में दूर-दूर तक पहुँचना चाहने वाली दृष्टि को यह पुस्तिका एक प्रकाश-किरण रूप बनेगी, ऐसी आशा है।*

राजघाट, काशी —अच्युत पटवर्धन
२०-६-१९५५

---

* यह 'साम्ययोग का रेखाचित्र' के लिये लिखी गयी प्रस्तावना है। उसके बाद 'भूदान यज्ञ' में प्रकाशित साम्ययोग-विषयक अन्य तीन लेखों

का भी समावेश करके यह संकलन प्रस्तुत है। साथ ही, इसी विषय से सम्बद्ध (मार्क्स से आगे का कदम गांधीजी) कविता राष्ट्रकवि 'दिनकर' की (भूदानयज्ञ १४ नवम्बर ५८ से उद्धृत) रखी गई है। बीच-बीच में एवं अन्त में प्रायः उसी समय के 'विमल'-हृदय के कुछ सहज उद्गार—जो बाद में १९६९ में 'मौन के अनुनाद' नाम से सङ्कलित-प्रकाशित हुए थे, यहाँ उद्धृत किये हैं। मूल लेखिका परम श्रद्धेय "दीदी" का नाम उसी रूप में रखा गया है जिस रूप में १९५५-५८ में प्रकाशित हुआ था।

आशा है देश की उत्तरोत्तर विकट एवं चिन्ताजनक होती जाती स्थिति में युवा-हृदयों को राह दिखाते ये लेख बल-संचार व दिशा-निर्देश करेंगे।

प्रस्तुत सङ्कलन व सम्पादन की सभी त्रुटियों के लिए

सविनय क्षमाप्रार्थी—

एक स्मृतिजीवी

मकर संक्रान्ति-
१९९१

क्रम

१—साम्ययोग का रेखाचित्र पृ० १–९

२—साम्ययोग का समग्र दर्शन पृ० १०–१६

३—साम्ययोग अर्थात् समर्पण योग

[१]— पृ० १७–२०

[२]— पृ० २१–२६

४—बापू का आगमन पृ० २७–२९

५—आखिर क्यों ? पृ० ३०

साम्ययोग का रेखाचित्र

योरोप में कार्ल मार्क्स ने क्रान्तिकारी अर्थशास्त्र का प्रतिपादन किया, तब से दुनिया में एक नया युग प्रारम्भ हुआ। आज का युग मार्क्स का है या गान्धी का ?—ऐसा विवाद बहुधा हुआ करता है। परन्तु सच्चाई यह है कि "मार्क्स के बाद गांधीजी आये। इसलिए आज का युग केवल गांधीजी का युग है"—यह कहना गलत होगा। मार्क्स की विचारप्रणाली और मार्क्सवादियों के पुरुषार्थ से दुनिया में जो एक विलक्षण परिवर्तन आया उस भूमिका से गांधीजी के विचार और कार्य को लाभ ही हुआ है। इसलिए यहाँ रचनात्मक दृष्टि से साम्यवाद और साम्ययोग अथवा सर्वोदय का तुलनात्मक विचार करने का प्रयत्न किया है।

साम्यवाद	साम्ययोग
(१)	(१)
सापेक्ष मूल्य	**निरपेक्ष मूल्य**
मनुष्य स्वयं भला या बुरा नहीं है। परिस्थिति उसे भला या बुरा बनाती है।	मनुष्य स्वभाव से भलाई करने की वृत्तिवाला है। उसके चित्त में जो दोष आता है वह परिस्थिति संस्कार या विकार में से पैदा होता है।
(२)	(२)
वस्तु-परिवर्तन	**आत्म-संयम**
परिस्थिति में बलपूर्वक ऐसा परिवर्तन लाना जिससे समाज में दोष पैदा हों ही नहीं।	नये संस्कारों की स्थापना करना और परिस्थिति में इस प्रकार का परिवर्तन लाना कि दोषों का निराकरण हो और मनुष्य की मूलभूत सत्प्रवृत्ति को बाहर आने का मौका मिले।

साम्यवाद	साम्ययोग
(३) **शासन और नियन्त्रण**	(३) **हृदय-परिवर्तन**
बाह्य नियन्त्रण तथा शासन के द्वारा मनुष्य के स्वभाव को अपेक्षित दिशा में घुमा देने का प्रयत्न।	बाह्य परिवर्तन व्यक्ति के अपने सहयोग द्वारा करने का प्रयत्न ही हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया का आधार है। व्यक्ति की आन्तरिक अभिव्यक्ति के लिए बाह्य परिवर्तन से अनुकूलता उत्पन्न की जानी चाहिये।
(४) **मानव : एक साधन मात्र**	(४) **मानव : परम मूल्य**
क्रान्ति की प्रक्रिया में व्यक्ति के नाते मनुष्य का महत्त्व नहीं है। नागरिक के स्वयं कर्तृत्व के लिए अवसर नहीं है, वह एक साधन मात्र बनता है।	यहाँ मानव ही परम मूल्य है। उसके विकास के लिये ही यह सब योजना एवं व्यवस्था है। क्रान्ति की प्रक्रिया उसका स्वयं प्रेरणा एवं स्वयं कर्तृत्व के लिए पोषक बननी चाहिए।
(५) **शासन का दृढ़ीकरण**	(५) **शासनमुक्ति की साधना**
सत्ता की मार्फत समाज का परिवर्तन करने का आग्रह, इसके परिणामस्वरूप राज्य संस्था सर्वंङ्कष बन जाती है।	यहाँ व्यक्ति का विकास ही मुख्य विचार है। इसलिए नागरिकों की स्वयंकर्तृत्व की दिव्य शक्ति को जागृत एवं संगठित

साम्यवाद	साम्ययोग
शासन-मुक्त समाज की ओर आगे बढ़ने के लिए यह प्रक्रिया अनुकूल नहीं है।	करके उसे एक क्रान्तिकारी सामाजिक मूल्य बनाने का प्रयास है। इसलिए इस प्रक्रिया में मनुष्य है साधन + साध्य दोनों। अर्थात् क्रान्ति की प्रक्रिया के साथ-साथ ही साधन मुक्त समाज स्थापित करने का रचनात्मक कार्य प्रारम्भ हो जाता है।
६. हिंसा की अप्रत्यक्ष प्रेरणा	**६. अहिंसा की प्रत्यक्ष प्रेरणा**
साम्यवाद अन्तिम एवं निरपेक्ष मूल्य जैसे किसी तत्त्व को नहीं मानता। वह हिंसा का पक्षपाती भले न हो, परन्तु उसमें किसी शाश्वत मूल्य का आग्रह नहीं है। इसलिये मनुष्य को अहिंसा की ओर प्रेरित करने की बजाय उससे विमुख होकर हिंसा की ओर प्रवृत्ति होने की अप्रत्यक्ष प्रेरणा मिलती है। सापेक्ष मूल्यवाद का यह स्वाभाविक परिणाम है।	यहाँ अहिंसा को जीवन का निरपेक्ष एवं शाश्वत मूल्य माना गया है; इसलिए क्रान्तिकारी व्यक्ति हिंसा-विमुख बनता है। उसे अहिंसा अपनाने की प्रत्यक्ष प्रेरणा मिलती है।
७.	७.
गरीबी-अमीरी न तो ईश्वर ने बनाई है न भाग्य से आती	गरीबी-अमीरी ईश्वर या भाग्य की बनाई हुई नहीं,

साम्यवाद	साम्ययोग
है; वह अनिवार्य भी नहीं है। आर्थिक असमानता मनुष्य ने उपजाई है।	अनिवार्य नियम भी नहीं है, आर्थिक असमानता और भेद मनुष्य ने ही खड़ा किया।
८.	८.
व्यक्तिगत-संग्रह लोलुपता और आर्थिक प्रभुत्व की आकांक्षा में से आर्थिक विषमता पैदा होती है।	
९.	९.
इस विषमता का निराकरण ऐतिहासिक विकास क्रम का एक आवश्य अंग है। यह अवश्यम्भावी है और इच्छनीय है।	संग्रह-लोलुपता और स्वामित्व की आकांक्षा मनुष्य का स्वभाव-गुण नहीं है। यह विकार है। इसलिए इसका निराकरण सृष्टि-नियम के अनुसार एवं ऐतिहासिक क्रम विकास के अनुसार भी अवश्यंभावी तथा इष्ट है।
(१०)	(१०)
सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दोषों की जड़ें उत्पादन के साधन तथा पद्धति में हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो आर्थिक विषमता ही सामाजिक अनर्थों का मूल है।	सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दोषों का आर्थिक विषमता के साथ अभेद्य सम्बन्ध है। जीविका के साधन से जीने की पद्धति अवश्य निश्चित होती है परन्तु सब अनर्थों का एकमात्र कारण आर्थिक विषमता ही नहीं है।

साम्यवाद	साम्ययोग
(११)	(११)
आर्थिक विषमता का निराकरण करते ही सब दोष अपने आप मिट जायेंगे ।	सामाजिक दोषों के निवारण में आर्थिक विषमता के निराकरण से मौलिक सहायता मिलती है ।
(१२)	(१२)
समाज की संस्कृति उसकी राज्य-व्यवस्था एवं आर्थिक व्यवस्था के आधार पर निर्धारित होती है । अर्थात् किसी समाज की राजनीति एवं अर्थनीति उसकी आर्थिक रचना के प्रतिबिम्ब हैं ।	आर्थिक व्यवस्था में समाज की संस्कारिता अभिव्यक्त होती है । आर्थिक व्यवस्था के अनुरूप राज्यतन्त्र बनता है । अर्थ रचना और राज्यतन्त्र दोनों का संस्कार समाजनीति पर पड़ता है ।
(१३)	(१३)
व्यक्तिगत मालिकी व मिल्कियत को हटाना जरूरी है ।	व्यक्तिगत मालिकी और मिल्कियत को हटाने के साथ-साथ स्वामित्व और सम्पत्ति की भावना को भी हटाना होगा ।
(१४)	(१४)
पहले कदम के रूप में व्यक्तिगत मालिकी की जगह राज्य की मालिकी लानी चाहिये; और राज्य संस्था पूरी तरह अमजीवियों के	व्यक्तिगत मालिकी निषिद्ध है तो सामूहिक मालिकी की भावना का भी निराकरण हमारा लक्ष्य होना चाहिये । इसलिये मालिकी न तो व्यक्ति की होनी

साम्यवाद	साम्ययोग
कब्जे में होनी चाहिये। 'राज्यीकरण' (Stateown ership) समाजीकरण (Communization) का पहला कदम है।	चाहिये, न व्यक्तियों के समूह की। समाजरूपी परमात्मा ही समस्त सम्पत्ति का स्वामी माना जाना चाहिये। व्यक्तियों की अहन्ताओं का जमाजोड़ (योगफल) ही परमात्मा नहीं है।
(१५)	(१५)
श्रमिकों का सरकार पर प्रभुत्व हो यही वास्तव में श्रमिकों का स्वामित्व है।	श्रमिकों द्वारा स्वयं चुने गये प्रतिनिधियों की मालिकी को श्रमिकों की मालिकी मानना यह एक बड़ा भ्रम है। किसी एक वर्ग की या सरकार की मालिकी को समाज की या लोकात्मा ईश्वर की मालिकी नहीं कहा जा सकता।
(१६)	(१६)
वर्ग सङ्घर्ष	**वर्ग-परिवर्तन**
श्रमिकों की सरकार बनाने के लिये पूंजीवादियों के हाथ से जबर्दस्ती सत्ता छीन लेनी पड़ेगी; आवश्यकता पड़े तो उनका वध भी करना पड़ेगा।	सभी व्यक्तियों को उत्पादक बनाना होगा; पूंजीपतियों को भी श्रमजीवी बनना चाहिये।
(१७)	(१७)
सम्पत्ति एवं उत्पादन के केन्द्रीकरण से एक पक्ष की	सम्पत्ति और उत्पादन के विकेन्द्री-करण के परिणाम-

साम्यवाद	साम्ययोग
अधिसत्ता बनती है। तब शासन की अनिवार्यता बढ़ती जाती है।	स्वरूप राज्यसत्ता का विकेन्द्रीकरण होता है। इससे शासन की आवश्यकता उत्तरोत्तर घटती जाती है। क्रान्ति की प्रक्रिया में ही शासन के विघटन की अप्रत्यक्ष प्रक्रिया समायी हुई है। तब पक्षातीत शासन पद्धति की स्थापना अपने आप होती है।
(१८)	(१८)
राष्ट्रवादी मनोवृत्ति पुष्ट होती है क्योंकि प्रत्येक देश का श्रमजीवी अपने देश की राज्यसत्ता पर कब्जा पाने की कोशिश करता है। आज तो साम्यवाद में प्रायः आन्तरराष्ट्रीयता का आग्रह शामिल हो ही चुका है।	साम्ययोग की भावना से 'सर्वभूत हितेरतः' की वृत्ति के बीज बोये जाते हैं। राज्य की सीमाओं से परे जाने की प्रक्रिया का सहज भाव से प्रारम्भ होता है।
(१९)	(१९)
श्रमिकों के संगठन के लिए क्रान्तिकाल के दौरान केन्द्रित उत्पादन जरूरी है। इससे साम्यवादी अधिराज्य में भी केन्द्रित उत्पादन का आग्रह और विकास–अर्थात् पूंजी-	क्रान्ति की प्रक्रिया में बाह्य संगठन को ही सर्वस्व नहीं माना गया है। श्रमिकों का हृदय परस्पर जुड़े इसी का आग्रह है। इसलिये क्रान्ति की प्रक्रिया में ही विकेन्द्रीकरण की

साम्यवाद

वादी केन्द्रित उत्पादन का ज्यों की त्यों स्वीकार करना होगा तथा उत्पादन और वितरण का सम्पूर्ण केन्द्रीकरण जरूरी होगा।

(२०)

वस्तुनिष्ठ

आर्थिक संयोजन का उद्देश्य अधिक उत्पादन और सुलभ वितरण है। केन्द्रिय मूल्य है उपभोग की वस्तु।

(२१)

उपभोग्य वस्तुओं की प्रचुरता और समान वितरण—यही परम साध्य है। सांस्कृतिक उन्नति का यही प्रधान लक्षण है। परिणामस्वरूप मनुष्य और पशु दोनों उत्पादन के साधन बन जाते हैं। यन्त्र प्रधान हो जाते हैं, मानव और अन्य प्राणी गौण साधन बन जाते हैं।

साम्ययोग

ओर कदम बढ़ने लगते हैं। वर्ग-भेद मिटने के बाद उत्पादन एवं वितरण अधिक विकेन्द्रित पद्धति से हो सकेगा। उत्पादन-साधनों के केन्द्रीकरण की आवश्यता बहुत थोड़ी हद तक मानी जायेगी।

(२०)

मानवनिष्ठ

आर्थिक संयोजन का उद्देश्य उत्पादक की शक्ति तथा कुशलता के उपयोग-द्वारा उसके व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण उत्कर्ष है। केन्द्रीय मूल्य है—उत्पादक मानव।

(२१)

उत्पादन का उद्देश्य उत्पादक का सांस्कृतिक विकास है। जीवन की उपयोगी सामग्री उत्पन्न करने में मनुष्य की तथा पशु की सम्पूर्ण शक्तियों का उपयोग एवं विकास होना चाहिये। उत्पादन मनुष्य के लिये है, मनुष्य उत्पादन के लिये नहीं है।

साम्यवाद	साम्ययोग
(२२)	(२२)
काल को संहारक तत्त्व मान कर उसके साथ निरन्तर स्पर्धा; उत्पादन की गति बढ़ाने और समय बचाने की धुन बनी रहती है।	काल को आयुष्य का उपादान तथा जीवन का पोषक तत्त्व मान कर उसका यथा सम्भव सहयोग प्राप्त करने का प्रयास; समयज्ञता और प्रत्युत्पन्नमति का विकास होता है।
(२३)	(२३)
केन्द्रित उत्पादन के लिये विशेषज्ञों तथा व्यवस्थापकों की अनिवार्यता होती है। इसमें से फिर मुनीमशाही और विशेषज्ञ-सत्ता का आविर्भाव होता है।	विकेन्द्रित उत्पादन में उत्पादक ही निरन्तर विशेषज्ञ में परिणत होता जाता है। अनेक प्रकार एवं प्रमाण के उत्पादन में उत्पादक स्वयं ही व्यवस्थापक बन जाता है।
(२४)	(२४)
सामुदायिक स्वामित्व होने पर भी अर्थनीति का उद्देश्य रहता है—प्रचुर भोग सामग्री और वैभव-विलास, सामुदायिक परिग्रह का संयोजन, वासनाओं और जरूरतों को प्रोत्साहन।	त्याग और सन्तोष की भावना का विकास अर्थनीति का उद्देश्य है। अपरिग्रह के सिद्धान्त का आर्थिक क्षेत्र में विनियोग, आत्मतुष्टि और दूसरों के साथ तादात्म्य में परिपाक होता है।

●

साम्ययोग का समग्र दर्शन

आज गणतन्त्रवाले भौतिकवाद को मानते हैं, तो संघर्षवादी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को। यह देह पञ्चमहाभूतों से बनी है, इसे वे मानते हैं। चूना और पान एक जगह आने से पान रंग लाता है, उसी प्रकार पृथ्वी पञ्चमहाभूतों से बनी है, यह एक मिश्रण है, बस इतना ही वे मानते हैं। उसका नियमन करने वाली कोई और शक्ति है, इस बात को वे कबूल नहीं करते, परन्तु सृष्टि केवल जड़ और भौतिक वस्तुओं से ही बनी नहीं है। सृष्टि के मूल में चैतन्यमय आत्मशक्ति है और उसी चैतन्यमय आत्मशक्ति का अधिष्ठान साम्ययोग का है। सृष्टि जड़ वस्तु नहीं है, वह चैतन्यमय आत्मशक्ति है, इस बात को साम्ययोग मानता है और उसका नियन्त्रण करने वाली कोई शक्ति है, इस बात को भी साम्ययोग कभी नहीं भूलता।

गाय के शरीर के किसी एक हिस्से में दूध नहीं रहता। वह जो खाती है, उसका रक्त बनता है और प्रेम के कारण उसका दूध बन जाता है। प्रत्येक मानव में आत्मशक्ति है। यदि उसकी आत्मशक्ति जाग जाय, तो वह उस रक्त का दूध बना सकता है। यह आत्मशक्ति सभी में है और सबमें समान रूप से है। प्रत्येक मानव उस आत्मशक्ति का प्रतिनिधि है। इतना ही नहीं, वह प्राणिमात्र में और वनस्पतियों में भी विद्यमान है।

संघर्षवादी समाजवादी कहते हैं कि "शोषक वर्ग का हृदय-परिवर्तन और विचार-परिवर्तन कदापि न होगा। ये लोग जब तक रहेंगे, तब तक सारे समाज का शोषण करते ही रहेंगे। इन्हें समाप्त ही करो, तभी समाज में शान्ति होगी।" पर यह सोचना गलत है। साम्ययोग मानता है कि मनुष्य-मात्र में आत्मा है। इस बात पर विश्वास करना होगा, अन्यथा हमसे क्रान्ति नहीं होगी। साम्ययोग

का प्रत्येक सेवक ऐसा विश्वास रख कर ही आगे कदम रखता है कि मनुष्य मात्र में आत्मा है और उसमें बहुत बड़ी शक्ति है।

सृष्टि से तादात्म्य

वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बसु ने कहा था कि वनस्पतियों को भी मन है, उनमें भी भावना होती है और वे भी सोच सकती हैं। हमारा आयुर्वेद भी तो यही कहता है कि वनस्पति बिलकुल मनुष्य के समान बोलती है। बात करती है, क्योंकि उसे भी मन है, बुद्धि है, उसका भी एक स्वभाव है।

एक दिन भूदान-पदयात्रा में हमारा एक साथी बीमार पड़ा। कन्नौज के गौरीशंकरजी महाराज कहने लगे, "चलो विमला! दवा खोज कर लावेंगे। हम लोग चल दिये। चलते समय गौरी-शंकरजी ने अपने साथ चावल, हलदी, कुङ्कुम आदि सामग्री ले ली। जो दवा चाहिये थी, उसके पास गये, उसे प्रणाम किया। सामग्री उसके पास रख दी। बाद में कहने लगे, "माँ, तुम्हारी सेवा की आवश्यकता है, कल आऊँगा और ले जाऊँगा।" मुझे उनकी इस प्रकार की पूजा और प्रार्थना का आश्चर्य लगा। मैंने पूछा, "आपने उससे क्या बात की? क्या इस तरह वह ओषधि भी आपसे बात करेगी? वह तो कुछ भी नहीं बोली!" उनकी आँखों में आँसू छलक आये। कहने लगे—"वह जड़ नहीं है, चेतन है। जड़ होती, तो उसका विकास कैसे होता? उसका भी तो अपना एक स्वभाव है। उसे लाने के लिए भी दिन तथा समय को देखना पड़ता है। उसे निमन्त्रण देना होता है। तब लाया जाता है।"

भारतीय अध्यात्म-शास्त्र वनस्पतियों में भी आत्मा के दर्शन करता है। वनस्पति से हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध है। हम उससे नाता तोड़ेंगे, तो वे हमें दे नहीं सकते। वृक्ष हमें फल नहीं दे सकते, लताएँ

हमें फूल नहीं दे सकतो, फसल हमें अनाज नहीं दे सकती, कपास के हमें दर्शन नहीं हो सकते। हमारे पूर्वजों ने तुलसीपूजा का क्रम जन-जीवन में चलाया, उसे धर्म का नाम दिया। यह सिद्धान्त अन्धश्रद्धा का नहीं, हमारे व्यापक आत्मदर्शन का है। प्राणियों की हत्या न करो, यह सिद्धान्त कहाँ से आया है ? किसी को दुख न पहुँचाते हुए, किसी की हत्या न करते हुए मानव अपना जीवनक्रम चलावे। यही मानवीय जीवन का सिद्धान्त है और वही सिद्धान्त भूदान-आन्दोलन सहज सुलभ वाणी से हमें समझाने का महान् प्रयास कर रहा है।

गांधी नोआखाली की यात्रा पर थे। किसी कारणवश उन्हें तुलसी के पेड़ की आवश्यकता पड़ी। मनु से कहा—'बेटी ! जरा तुलसी के पत्ते तो ले आओ ! मनु गयी और ढेर से पत्ते लाकर बापू के सामने रख दिये। बापू को बड़ा दुख हुआ। कहने लगे—"इतने पत्ते क्यों लायी ? मैंने तो थोड़े माँगे थे, तूने पेड़ को कितना कष्ट दिया ? सबसे कम-से-कम लेना चाहिये और आवश्यकता के अनुसार ही लेना चाहिए।" यही धारणा साम्ययोग के सिद्धान्त में आती है !

'मनुष्य को वनस्पति और सकल प्राणियों के साथ प्रेम से रहना होगा और उनका सहयोग प्राप्त करना होगा', साम्ययोग के इस सिद्धान्त के अनुसार ही हम समाज में सत्य और अहिंसा की प्रतिष्ठा कर सकेंगे; अन्यथा नहीं।

अब आदमी में ज्ञान नहीं था, वह खाना नहीं जानता था, पहनना नहीं जानता था, जंगल में रहता था, उसके पास धन न था, उसे कृषि का भी ज्ञान न था, तब प्राणियों की हत्या करना एक धर्म था। तब मांसाहार ही धर्म था। आज तो बात वह नहीं है। फिर भी आज जीभ की लालसा के लिए हिंसा की जाती है, शिकार खेला

जाता है। यह कैसा धर्म ? किसी-किसी को शिकार का बड़ा शौक होता है। वह शेर मारता है, हिरण मारता है। अपने घर में उसका चमड़ा बिछाता है। कहता है मृगचर्मासन है, व्याघ्रचर्मासन है। शेर के मुँह में मसाला भरता है, हिरण के मुँह में मसाला भरता है। दरवाजे के दोनों ओर दीवार में उसे लगाकर घर को सजाता है। पर सोचने की बात है कि कितना सुन्दर होता है शेर ? जंगल का राजा कहते हैं ! कितना सुन्दर होता है हिरण ? कूदता, फाँदता, दौड़ता हुआ सृष्टि की शोभा बढ़ाता है। हिरणों से यह वन कितना सुन्दर लगता है ! लगता है दिन-रात इन्हें देखा ही करूँ। सोचना चाहिए कि क्यों मारते हो वनदेवी के इन शिशुओं को ?

अद्वैत का आधार

साम्ययोग कहता है कि मानव मात्र की आन्तरिक एकता के कारण समाज की रचना अद्वैत के आधार पर होगी। भेदभाव को स्थान नहीं रहेगा। इसमें जाति का सवाल ही नहीं आयेगा। मानवता ही एकमात्र जाति कहलायेगी। यह धनिकों का वर्ग, यह गरीबों का वर्ग, ऐसा उसमें नहीं होगा। मैं ब्राह्मण, तू हरिजन, अतः मैं श्रेष्ठ तू नीच, यह भाषा सुनने में नहीं आयेगी। इसी को अद्वैत भाव कहते हैं।

अब अद्वैत के सिद्धान्त पर ही समाज-रचना होगी। समाज अब यह भेद सह न सकेगा। भंगी लोग आज हमारा मैला उठाते हैं, पाखाना साफ करते हैं और उनकी एक अलग ही जाति बनी हैं। चमार हमारे जूते बनाते हैं, अतः वे नीचे हैं उनकी जाति अलग है, उनकी बस्ती अलग, गाँव के बाहर है। यह अन्याय है, अब अद्वैत के आधार पर नयी समाज-रचना होने वाली है। अपना मैला हमें ही उठाना होगा। अपने जूते भी हमें ही बनाने होंगे। यह भंगियों की बस्ती, यह चमारों की, यह हरिजनों की, यह पटेलों की,

यह ब्राह्मणों की, इस प्रकार की पृथक्-पृथक् बस्तियाँ और जातियाँ अब नहीं रहेंगी।

अब एक-दूसरे से दूर रहने का, एक-दूसरे को नीच मानने का घोर पातक और नहीं होना चाहिये। साम्ययोग इसे नहीं मानता। हरिजन गन्दे हैं, तो उन्हें स्वच्छता का पाठ पढ़ाओ। वे अशिक्षित हैं, तो उन्हें साक्षर बनाओ। यह भेदभाव निकाल डालो। सर्वोदय का आज यही इशारा है। जब तक हम उनके निकट जाकर मृदु संभाषण करते हुए उनके हृदय में अपने लिए स्थान नहीं जमा सकते, तब तक अद्वैत समाज-रचना नहीं होगी।

मानवमात्र में आत्मा है, इस बात को सर्वप्रथम मानना होगा, अन्यथा हमसे अहिंसा नहीं होगी। भूदान-सेवक इस बात को भली-भाँति समझ लें। मानवमात्र की व्यावहारिक एकता तभी सम्भव है। उस आन्तरिक एकता के कारण ही समाज की रचना अद्वैत के आधार पर होगी।

इस सृष्टि का मालिक परमात्मा है। मनुष्य जमीन या उद्योग-धन्धों का मालिक नहीं बन सकता। वह समाज या देश का भी मालिक नहीं बन सकता। जमीन मानव ने नहीं, परमात्मा ने निर्माण की है। उसकी शक्ति का कोई पार नहीं है। वही सारे विश्व का मालिक है, वह हमें दिखता नहीं, परन्तु हम सबको देख रहा है। उसके राज्य में कोई हिन्दू नहीं, कोई मुसलमान नहीं, कोई पारसी नहीं, कोई ईसाई नहीं। इस प्रकार का भेदाभेद उसके वहाँ नहीं। उसे हिन्दू 'कृष्ण' नाम से पुकारता है, मुसलमान 'अल्लाह' के नाम से याद करता है। पारसी 'अहुरमज़्ददेव' कहता है, तो ईसाई 'गॉड' कह कर उसे भजता है। किसी नाम से पुकारो, उसे कोई राग-द्वेष नहीं। भगवान् इस सृष्टि का मालिक है। हम सब उसकी सन्तान आपस में भाई-भाई हैं।

हम इस दुनिया में चार दिन के लिए ही तो आये हैं। जाते समय यह सब यहीं छोड़कर जाने वाले हैं। मिल हो, कारखाना हो, मोटरें हों, अपार सम्पत्ति हो, मकान हो, यह सब यहीं रहने वाला है। मनुष्य खाली हाथ आया था, खाली हाथ जाता है। मौत का वारन्ट आता है, तो सब कुछ चुपचाप छोड़ कर चल देना पड़ता है। मनुष्य के हाथ में न जन्म है, न मृत्यु। फिर भी वह साधन करता है।

साम्यवाद कहता है कि पूँजीपतियों को नष्ट करके रहेंगे और गरीबों का राज लायेंगे। लेकिन मैं कहती हूँ कि आखिर में किसी न किसी का राज तो वे लायेंगे हो न ? पूँजीपति नष्ट होंगे, गरीब पूँजीपति बनेंगे, यह कैसा साम्यवाद है ? इससे तो विषमता फिर भी कायम ही है। साम्ययोग का सिद्धान्त इसके ठीक विपरीत है। साम्ययोग कहता है कि न पूँजीपति मालिक है, न गरीब मालिक है। मालिक तो परमात्मा है। सारा उसी का है। हम भी उसीके हैं। हमारा अपना कोई अस्तित्व नहीं है।

साम्ययोग कहता है कि यहाँ न कोई बड़ा होगा, न कोई छोटा। न कोई श्रेष्ठ कहलायेगा, न कोई नीच। इस सृष्टि का मालिक न पूँजीपति है, न गरीब ! मनुष्य जमीन का या उद्योग-धन्धों का या समाज का या देश का मालिक नहीं बन सकता। उसका मालिक परमात्मा है। हम चार दिन के लिए आये हैं, यहाँ प्यार और सहानुभूति से रहेंगे। एक-दूसरे को प्यार देते हुए और एक दूसरे से प्यार पाते हुए जीवन के दो दिन का आनन्द भोगेंगे। साम्ययोग की यही प्रणाली है। इसी प्रणाली से उद्योग-धन्धे, शिक्षणादि की व्यवस्था जनता के हाथ में आवेगी। ग्रामीण जनता स्वयं अपनी सब व्यवस्था अपने ग्राम में करेगी। व्यक्ति सर्वथा स्वाधीन रहेगा। ग्रामराज्य आयेगा।

साम्ययोग आज केवल भारत के सामने ही नहीं, अपितु विश्व के, अखिल मानव-समाज के सामने अपना सर्वोदय का सिद्धान्त रखता है और उसे मान्यता भी मिल गई है। यह विनोबाजीके साम्ययोग का दर्शन आज विश्ववासियों को हो रहा है और इसके फलने-फूलने के लिए विश्व की आँखें इस ओर लगी हैं।*

[* ग्रामस्वराज्य-प्रशिक्षण शिविर, डाकुआ, असम, ता० ८-४-५८]

●

कहते हैं सत्य कठोर न हो, मृदु हो, प्रिय हो।
सत्य कठोर हो सकता है ऐसा क्यों माना जाय ?
चट्टानें तोड़कर जल-स्रोत फूट पड़ता है।
जल को कठोर कहोगे ?
छोटे-से दीपक की छोटी-सी ज्योति
घने अँधियारे को चीरती जाती है।
प्रकाश को कठोर कहोगे ?
नन्हें से बालक की सुनहली मुस्कान
वज्र हृदय को विगलित करती है।
उस निष्कलंक स्मित को कठोर कहोगे ?
सत्य कठोर हो ही नहीं सकता
सत्य के पास दया-माया भी नहीं रहती।
क्रूरता के आँचल में दया खिलती है
निष्ठुरता की छाया में माया फैलती है।
सत्य यानी आलोक !
सत्य यानी प्रेम का प्रज्वलित आकाशदीप !!

['मौन के अनुनाद']

साम्ययोग अर्थात् समर्पण-योग

: १ :

ईश्वर का अर्थ होता है व्यापक बनना। ईशानाम् वरः ईश्वरः—जो व्यापक है उसे ईश्वर कहते हैं। वह सर्वत्र ओतप्रोत है। कपड़े में सूत ओतप्रोत भरा है, ताने-बाने से कपड़ा तैयार होने पर सूत का अलग अस्तित्व खो गया! इसी तरह सर्वव्यापी ईश्वर है। वह चराचर में ओतप्रोत भरा है। उसने अपना अस्तित्व इधर जगत् में फैला दिया है। उसका अंश हममें आ गया। उसके हम पर अनन्त उपकार हैं। उसका अस्तित्व, उसकी शक्ति, उसके अधिकार; सभी बातों को हम मान लेते हैं, तब उसका अंश हम में आ ही जाता है और जहाँ इस प्रकार शुद्धि हुई वहाँ धन-संग्रह की इच्छा समाप्त हो जाती है।

'ईशवास्यमिदं सर्वं' का अर्थ है कि ईश्वर का सर्वत्र निवास है। सबमें उसका ही निवास है; अतः जिस किसी वस्तु का हमें उपभोग करना हो, उसे प्रथम ईश्वर को अर्पण करना होगा। 'श्रीकृष्णार्पण-मस्तु' जो हम कहते हैं, यह उसी अर्पण-पद्धति की प्रतीक—झाँकी या प्रक्रिया है।

आवश्यकता-मात्र के लिए संग्रह उचित

हम जगत् में चार दिन के लिए आये हैं; तो केवल उदर-पोषण के लिए ही, हमें मिली वस्तुओं का उपभोग करेंगे, विलास के लिए नहीं, संग्रह के लिए नहीं। 'चार दिन की जिन्दगी' का स्मरण रहेगा, तो संग्रह की बुद्धि ही नहीं होगी। वह अभिलाषा नहीं उठेगी। बल्कि वहाँ वैराग्य की भावना का ही बालबाला होगा। ऐसी भावना से चित्त में संग्रह-परिग्रह का नाम न रहेगा और तभी

साम्ययोग, जो "ईश्वर को मालिक मान कर वस्तु का उपयोग करने से धन-संग्रह की अभिलाषा नष्ट होगी," इस सिद्धान्त का परिणाम है, उसका प्रभाव मानव-जीवन पर होगा। आवश्यकता के लिए धन-संग्रह धर्म है। मकान बहुत सजाने हैं, पकवान खाने हैं, मोटर खरीदनी है, नौकर रखना है, यह काम करना है, यह अधर्म है। धन-संग्रह के लिए झूठ बोलना, कपट करना, यह अधर्म है। विनोबाजी ने प्राचीन सन्तों की भाँति हममें वैराग्य की भावना जगाने का काम किया है।

मानव सब एक हैं

साम्ययोग का दूसरा सिद्धान्त यह है कि मानव सब एक हैं। इसके कारण प्रभुत्व का, स्वामित्व का मोह नष्ट होता है। हम लोगों पर शासन करें, उन्हें तुच्छ समझें, यह भावना—"हम सब एक है", "सबमें परमेश्वर का अंश है," ऐसा मान लेने पर नष्ट हो जाती है। आजकल देखा जाता है कि एक-दूसरे के सहयोग से व्यवस्था तो रखते हैं, पर सबकी सहमति के सिवा पत्ता न हिलेगा, ऐसा कुछ-न-कुछ अड़ंगा बीच में रख ही देते हैं। इससे सहयोग में विकृति आ जाती है। साम्यवादी कहते हैं कि "आप हमें चुनकर भेजें। सारी जनता का कल्याण करने के लिए हम शासन-सूत्र हाथ में ले रहे हैं।" इस तरह वे सत्ता में जाकर आप पर उपकार ही कर रहे हैं, ऐसा वे दर्शाना चाहते हैं। यह गलत है। इस तरह तो एक के हाथ से शासन जाकर दूसरे के हाथ में आना होता है।

शहरी सुशिक्षित लोग कहते हैं कि "ये देहाती अपढ़, अज्ञानी, गँवार हैं। ये क्या जानें शासन करना ? हम पार्लमेंट में जायेंगे, इनकी व्यवस्था करेंगे। हमें क्षमता का उपयोग करने को मिले तो इन्हीं का काम करने जा रहे हैं। अपकार तो करेंगे ही नहीं, उपकार ही करेंगे इन पर।"

सारी भूमि और सम्पत्ति भगवान् की

पार्लमिन्ट में जाकर शासन के अंतरंग के मोह को ये सजा-सजा कर सामने रखते हैं। विनोबा जी कहते हैं कि दिल्ली में ही विधान-सभा क्यों ? उसे अब गाँव-गाँव में आना चाहिये। जब ईश्वर सबमें निवास करता है, यह हम समझ जायेंगे, तब किसी पर शासन करने का हमें मोह नहीं होगा। और ईश्वर सर्वत्र भरा है, वह सब दुनिया का मालिक है, इस बात को समझ जाने पर धन-संग्रह की अभिलाषा नष्ट होगी। समस्त सम्पत्ति भगवान् की है, इसलिए त्याग और बलिदान की भावना निर्माण होगी। इस प्रकार साम्य-योग के तीसरे सिद्धान्त का समाज पर प्रभाव होगा।

विश्व में होड़ का कारण

आज रूस और अमेरिका आपस में लड़ रहे हैं। इंग्लैण्ड और फ्रान्स अमेरिका के साथ हैं। रूस की तरफ चीन है। दोनों पक्षों में होड़ लगी है और इस होड़ का फल भोगने की वासना की प्रति-योगिता का परिणाम निष्कर्ष क्या है ? रूस का इतने देशों पर प्रभुत्व है, हमारा भी उससे ज्यादा देशों पर होना चाहिए। रूस ने परमाणु बम निकाला, हम उससे भी बढ़कर उद्जन बम निकालेंगे; शक्ति के प्रदर्शनक अस्त्रों की प्रतियोगिता है। त्याग और बलिदान इस प्रतियोगिता को नष्ट करेगा।

यह सब भगवान् का है, भगवान् ने दिया है, मानव सब एक हैं, हम सब एक-दूसरे के भाई हैं। इसमें पराया कोई नहीं है। ईश्वर यहाँ की सभी वस्तुओं का मालिक है। वह हमारा भी मालिक है। हम उसके हाथ की कठपुतलियाँ हैं। वह जैसा रखेगा, वैसा रहेंगे, उसकी इच्छा के विरुद्ध हम नहीं जा सकते। उसका प्रभुत्व और शासन हम पर है। इसे मान लेने पर आत्मज्ञान की

दिव्य ज्योति जागती है, आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है और दान, त्याग व बलिदान की भावना जाग जाती है। इसी का नाम है वैराग्य। इसीको कहते हैं मोह नष्ट होना।

आज हमारे स्वाधीन भारत में मंत्रिपद का चुनाव होता है। कैसी स्पर्धा चलती है? एक को दूसरा गिराना चाहता है। पानी-जैसा पैसा खर्च करते हैं, वोटों को खरीद लेते हैं, परन्तु सामने वाले को गिराते ही हैं। कहते हैं कि चुनकर हमें आना है। यह है आज का हमारा क्रम! इस लोकशाही में कहाँ है राम का आदर्श, कहाँ है भरत की आत्मनिष्ठा? कहाँ है लक्ष्मण की भ्रातृ-भावना? मंत्रि-पद की प्राप्ति के लिए कितना उपद्रव होता है? कहाँ है इसमें त्याग और बलिदान की भावना? यहाँ तो त्याग में भी उपकार की भावना छिपी है! और बलिदान में सत्ता हाथ में लेने की, शासक बनने की, शासन करने की!

सबकी समान भावनाएँ

साम्ययोग का यह चौथा सिद्धान्त है कि 'वह (ईश्वर) द्वैत नहीं है, वह अद्वैत है।' सबमें परमात्मा है। हम सब एक हैं। सबके शरीर में पंच महाभूत समान रूप से हैं। एक के शरीर को शीत लगता है, तो उसी समय दूसरे का शरीर भी शीत महसूस करता है। एक के शरीर को गरमी लगती है, तो दूसरे के भी शरीर को गरमी लगती है। एक को भूख लगती है, तो दूसरा कहता है कि मुझे भी भूख लगती है। याने सबकी समान जरूरतें व भावनाएँ हैं। तात्पर्य, शरीर-रचना धातुतत्त्व और आवश्यकताएँ सारे विश्व में एक हैं।

अब मन की बात देखें। प्रेम से बात करेंगे, तो सबको आनन्द और प्रसन्नता होगी। क्रोध में बोलेंगे, तो दूसरे को भी क्रोध

आयेगा। किसी का अपमान करेंगे, तो आपका भी अपमान होगा, याने सबकी मन की अवस्थाएँ एक-सी हैं। प्रेम, सहानुभूति, आदर की सबको आवश्यकता है। इस प्रकार मानव के शरीर को अन्न की, मन को प्यार की, सहानुभूति की और बुद्धि को ज्ञान की नितान्त आवश्यकता है। ये तीन बातें मानव को चाहियें ही।

समाज को प्रेम की सख्त जरूरत

प्रेम करो! कहने से हम पर कोई प्रेम नहीं कर सकता। प्रेम किया नहीं जाता, प्रेम तो हो जाता है। किसी से स्नेह माँगा नहीं जाता, किसी से वह मिल जाता है। कानून से प्रेम नहीं मिल पाता! वह तो बिना कानून के घर तक चला आता है। कागजों पर का कानून हृदय में प्रेम की ज्योति नहीं जला सकता। पैसा थैले में भर कर लाओगे और कहोगे कि मुझ पर प्रेम करो, तो कोई नहीं करेगा। समाज में सबसे बड़ी आवश्यकता है प्रेम की।

जंगल में शेर रहता है, बाघ रहता है। साथ में रहते हैं, परन्तु एक-दूसरे को नहीं खाते। और यहाँ मानव-समाज में मानव-मानव का शोषण करता है। आज एक-दूसरे के प्रति विश्वास की, प्रेम की भावना नहीं है। समाज की सबसे बड़ी आवश्यकता आज यही है। सहयोग व प्रेम की शक्ति की पूर्ति कोई सत्ता नहीं कर सकती। उसके लिए अद्वैत-सिद्धान्त का अधिष्ठान ही चाहिये। अतः हमारे भूदान-कर्मियों को अद्वैत सिद्धान्त की प्रतिष्ठा अपने मन में करनी होगी, तभी समाज में हमें उसके दर्शन होंगे। मनुष्य एक-दूसरे के साथ तभी प्रेम से रहेगा! झगड़े को वह बढ़ायेगा नहीं। अद्वैत का सिद्धान्त जब हमारे जीवन में उतर आयेगा, तब हम चोर को पकड़ेंगे नहीं। उसे सजा मिलनी चाहिये, उसने चोरी की है, उसे जेल में भेजना ही चाहिये, ऐसा हम नहीं कहेंगे।

सर्वोदय की कार्य-प्रणाली

विनोबाजी के मत के अनुसार यही सजा मिलेगी कि ढाई एकड़ जमीन उसे दी जायगी, बैल न हों, तो बैल दिये जायेंगे, हल दिया जायगा। यह सारा उसे चोरी की सजा में मिल जाना चाहिये। इतना उसे देकर गाँव वालों को उसके पास जाकर कहना चाहिये कि, 'भैया श्रम करो। श्रम की उपासना करो। पसीना टपकने दो। श्रम किये बिना हम खाना नहीं देना चाहते।' यह है हमारी सर्वोदय-समाज-रचना की कार्य-प्रणाली। आज तो केवल यह हमारा सपना है। यह एकदम साकार नहीं होगा, इसे हम समझते हैं। परन्तु अब हमें इसी दिशा में जाना है। हमारा मार्ग है प्रेम का, नम्रता का। हमें इस प्रकार की क्रान्ति करनी है।

[असम के ग्रामदानी गाँव कोलाबाड़ी में दिया भाषण, ता० ९-४-५८।]

[भूदानयज्ञ—४ जुलाई ५८]

सभी धर्म हो गये अस्त, नीति-शास्त्र हो गये स्तम्भित
यह जीवन हो गया निर्धर्मी, निर्नीति।
सभी मार्ग बिखर गये हैं, पन्थों ने सब, पाया विश्राम
यह जीवन हो गया निर्मार्ग, निष्पन्थ।
काल ठिठक गया है, दश-दिशाएँ हुई विलीन,
यह जीवन हो गया निष्काल, दिशातीत।
सभी संस्कार सूख गये हैं, कर्तव्यों ने पाया पूर्ण विराम,
प्रेमशिखा निर्धूम जल रही है
यह जीवन हो गया दीप्तिमय, आलोकमय।

[मौन के अनुनाद]

: २ :

पूंजीवाद में प्रत्येक व्यक्ति को धनसंग्रह की सुविधा है। अतः उसमें संग्रह की प्रतियोगिता चलती है। साम्यवाद में—संघर्षवादी समाजवाद में—सत्ता-प्राप्ति के लिए प्रतियोगिता चलती है।

साम्ययोग कहता है कि ईश्वर मालिक है, सब भगवान का है। अतः संग्रह की प्रतियोगिता समाप्त हो जाती है। मनुष्य में आत्मा है, परमात्मा है, अतः उसका अस्तित्व मान लेने से, उसका प्रभुत्व स्वीकार करने से हमारा अपना अस्तित्व नष्ट हो जाता है और इसलिए हममें जो शासन-वृत्ति होती है, शासक बनने की जो अभिलाषा हमारे मन में हमेशा घर बनाये रहती है, वह समाप्त हो जाती है। रह जाती है केवल एक-दूसरे के साथ सहयोग की भावना। सहयोग की ज्योति जग जाने पर हम स्वतः एक-दूसरे के निकट खिच जाते हैं। दूसरे का दुःख हमारा दुःख बन जाता है, दूसरे का संकट अपना संकट बन जाता है। पड़ोसी पर आया हुआ संकट हम अपना संकट मानने लगते हैं और उसके निवारण का मार्ग भी खोजते हैं। सहयोग की भावना इस प्रकार मनुष्य में परिवर्तन करा देती है। उसका हृदय-परिवर्तन होता है, उसके विचारों में परिवर्तन आ जाता है।

इसके बाद हमारा पहला कार्य हो जाता है—अपने गाँव की जमीन पूरे गाँव की बनाना, जमीन के लिए उपयुक्त पशु रखना, गाँव की सारी जमीन काम में लाना, उसमें छोटा-सा भी टुकड़ा खाली न रखना। इससे गाँव का उत्पादन बढ़ेगा, गाँव समृद्ध होगा, गाँव का वैभव बढ़ेगा, उसमें रौनक आ जायगी। गाँव के घर-घर में रामराज्य का, ग्रामराज्य का आनन्द छा जायगा।

पूंजीवाद में किसी के पास जमीन होती है, तो किसीके पास

नहीं होती, बेजमीनवाले जमीनवाले के यहाँ मजदूरी करने आते हैं। मजदूर कहता है कि जमीन मेरी नहीं है, मैं क्यों दिल लगा कर काम करूँ? आठ घण्टे की मजदूरी लेता हूँ, आठ घण्टे काम करता हूँ। इधर मालिक कहता है कि मजदूर से अधिक-से-अधिक परिश्रम लूँगा और उसे कम-से-कम पैसे दूँगा। मालिक का ध्यान जमीन की ओर नहीं रहता, वह केवल यही सोचता रहता है कि मजदूरी अधिक न जाये। इस प्रकार जमीन के मालिक का ध्यान जमीन पर नहीं, पैसे पर होता है और मजदूर का ध्यान भी जमीन की ओर नहीं, अपनी मजदूरी की ओर रहता है। यही एक कारण है, जिससे पूँजीवाद में उत्पादन नहीं बढ़ता, क्योंकि दोनों ही अपना-अपना स्वार्थ देखते हैं।

साम्यवाद में जमीन सरकार के हाथ में आती है। वह उसका एक सरकारी फार्म बनाती है। फार्मवाले वहाँ मजदूर ले जाते हैं। मजदूरों के लिए मकानों की व्यवस्था की जाती है। मजदूरों को मजदूरी मिलती है। मजदूरों पर सरकार के अधिकारी लोग निगरानी के लिए रहते हैं। इन सबको सरकार की ओर से वेतन मिलता है। उनका ध्यान वेतन की ओर होता है। उधर मजदूरों का ध्यान मजदूरी की ओर रहता है। सरकार का ध्यान मुनाफे की ओर रहता है। इन तीनों की खींचातानी चलती है। फलतः जमीन की उपेक्षा होती है और उत्पादन ठीक से होता नहीं। न सरकार समृद्ध होती है, न मजदूर।

साम्ययोग में जमीन गाँव की होती है, परन्तु गाँववाले मजदूर नहीं बनते। उन पर कोई अफसर नहीं रहता। वे अपनी जमीन का एक-दूसरे को सलाह से वितरण करते हैं। सब एक-दूसरे की मदद करते हैं। वे एक दूसरे पर विश्वास करते हैं। कोई भी काम करना होता है, तो सब लोग इकट्ठे होकर विचार करते हैं और काम की

पूर्ति की बात सोचते हैं। उस जमीन को कोई बेच नहीं सकता, क्योंकि सब जानते हैं कि अब इस जमीन का मालिक कोई अकेला व्यक्ति नहीं है। इस पर सारे गाँव की मालिकी है। साम्ययोग में सब लोग खेती करते हैं। परिश्रम करते हैं। थोड़ी-सी जमीन अलग रख कर उसमें कपास बोते हैं। वह कपास गाँव में ही रहती है। उसका सूत तैयार होता है और उससे कपड़ा बुना जाता है। यह सिलसिला गाँव को वस्त्र-स्वावलम्बी बनाता है।

पूँजीवाद में ऐसा नहीं होगा। आदमी शहर से कपड़ा लाकर गांववालों को देगा और उस पर मुनाफा प्राप्त करेगा। इससे लोग पराधीन हो जाते हैं। किसी को सन्तोष भी नहीं रहता। लोग कहते हैं कि दुकानदार मुनाफा खाता है और दुकानदार कहता है कि मुझे तो घाटा आता है। दरअसल बात यह रहती है कि लोग चाहते हैं कि उन्हें कपड़ा सस्ता मिले और दुकानदार की दृष्टि यह होती है कि उसे मुनाफा अधिक मिले। या दोनों में प्रतियोगिता चलती है।

साम्ययोग में अम्बर चरखा गाँव-गाँव में आता है। अम्बर चरखा हमें सूत ज्यादा देगा। साम्ययोग में प्रतियोगिता की जगह सहयोग आता है। बचा हुआ कपड़ा हम किसीको दे भी सकते हैं। किसीके पास अच्छा कपड़ा हुआ, तो हम ले भी सकते हैं या हम वैसा कपड़ा बुन भी सकते हैं। इस प्रकार साम्ययोग प्रतियोगिता को दूर रख कर सहयोग का मंगलमय वातावरण पैदा करता है।

साम्ययोग में जमीन, उद्योग-धंधे, शिक्षण आदि गाँववालों के अधीन रहते हैं। यह परिणाम "इस सृष्टि का मालिक परमात्मा है, मनुष्य जमीन या उद्योग-धंधों का मालिक नहीं बन सकता, समाज या देश का भी मालिक नहीं बन सकता"—साम्ययोग के इस मूल सिद्धान्त से उत्पन्न है। जमीन, उद्योग-धंधे और शिक्षण इनमें आ

जाने से जनता स्वयं अपनी व्यवस्था देखने लग जाती है और यह शक्ति जनता में आ जाती है। यह सारी शक्ति ग्रामदान की है!

आपके आसाम की बात बताती हूँ। आप लोग अपने इसी केन्द्र में अण्डी-मूँगा क्यों नहीं बनाना शुरू करते? बहुत बड़े परिमाण में यहाँ अण्डी-मूँगा का कपड़ा निर्माण किया जा सकता है। यह साम्ययोग का पवित्र वातावरण है। इसमें सहयोग की भावना होने से नैतिकता विकसेगी। यही एक यहाँ का धर्म माना जायगा।

आपके यहाँ मधुमक्खी-पालन बहुत अच्छा चलेगा। उसका भी केन्द्र से ही सम्बन्ध रखना होगा। एक और उद्योग हाथ में आयेगा! हमें तो समृद्ध होना है न।

साम्ययोग की समाज-रचना में किसी पर कोई जुल्म नहीं होगा। यहाँ कोई अधिकारी नहीं आयेगा। कोई पुलिस नहीं आयेगी। यहाँ हम ही अपने अफसर होंगे और हम ही अपने रक्षक, यहाँ हमारा नियम चलेगा। हमने अपनी सुविधा के लिए जो नियम बनाया, वही यहाँ चलेगा। ग्रामदान का कार्य शक्ति से नहीं, प्रेम से हुआ है। इसलिए हमारा सभी वातावरण प्रेम का, सहयोग का होगा।

यह रास्ता शान्ति का है, प्रेम का है और इसलिए सुख का है, समृद्धि का है, आनन्द का है, मंगल का है। इस रास्ते से चलेंगे, तो यह रास्ता, यह पंथ हमें गाँव के ग्रामराज्य की ओर ले जायगा। साम्ययोग का लक्ष्य है कि ग्राम-ग्राम में ग्रामराज्य और ग्राम-ग्राम में स्वराज्य हो।*

* असम के ग्राम-स्वराज्य-प्रशिक्षण-शिविर, डाकुआ में ता० १०-४-'५८ को दिये भाषण से।

बापू का आगमन

"गोचर को दे छोड़, अगोचर को भज प्यारे।"
कहा धर्म ने, "जो कुछ है, ऊपर नभ में है।"
और मनुज, सचमुच, मिट्टी को छोड़ युगों तक,
घूम-जाल में ग्रस्त घूमता रहा गगन में।
तब आया विज्ञान और बोला,
"यंत्रों से छू सकते हम जिसे, सत्य है;
और सत्य है वह जो तर्कों से जाना जा सकता है।"
थी इतनी-सी बात, नहीं विज्ञान गलत था,
क्योंकि मौन था वह उस पर जो कुछ अदृश्य है,
या कि जहाँ तक पहुँच नहीं है गोचर मन की।
किन्तु, मार्क्स ले उड़े, "सत्य है पत्थर केवल,
वायु सत्य उससे कम, नभ बिलकुल असत्य है।
ईश्वर नर की भ्रान्ति और यह धर्म ज़हर है।"
नर ने जब यह सुनी घोषणा, चौंक उठा वह;
व्योम-लोक से उसने अपनी दृष्टि हटा ली;
और सेवने लगा मृत्ति को वह यों, मानो,
मिट्टी ही जीवन, ईश्वर, सम्पूर्ण सत्य हो।
नया नियम निकला, जो कुछ भी करो, पुण्य है
अगर पुलिस को दृष्टि नहीं तुम पर पड़ती हो।
नया नियम निकला, जो कुछ भी करो श्रेष्ठ है,
कीर्ति-छत्र बाहर सिर पर यदि तना हुआ है।
नया नियम निकला कि राज्य सबसे ऊपर है
उससे भी ऊपर जितना पहले ईश्वर था।
अतः, व्यक्ति या प्रजा धूलि-तृणवत् नगण्य है।

नया नियम निकला, सब को रोटियाँ मिलेंगी,
चिन्तन पर अधिकार, किन्तु है केवल उनका
जो बलिष्ठ नेता बहुतों को मार-पीट कर,
या कि चौर्य से सिंहासन तक पहुँच गये हैं।
नया नियम निकला, कविताएँ वही श्रेष्ठ हैं,
जिनसे राजा और राज्य का बल बढ़ता हो।
नया नियम निकला कि विचारक वही पूज्य है,
जो राजा की भँवें देख चिन्तन करता हो।
नया नियम निकला, शासन हो जहाँ तुम्हारा,
धरती के उतने हिस्से को जेल बना दो।
आने दो उन्मुक्त किसी को मत विदेश से,
और नहीं अपने जन को बाहर जाने दो।
जग में सबसे सबका मिलना ठीक नहीं है,
क्या जाने क्या बात कौन किसको सिखला दे!
तज अदृश्य को मार्क्स दृश्य पर आ अटके थे,
सो, उनका यह दृश्य भयानक जेल हो गया।
निकले मार्क्स अपूर्ण, अतः, बापू! तुम आये।
नहीं बुलाया तुम्हें दासता ने भारत की,
न तो तुम्हारी तकली ने आह्वान किया था।
तुम आये सारी मानवता की पुकार पर,
भारत की तो मुक्ति आप-से-आप हो गयी।
तुम आये इसलिए कि टूटी कड़ियाँ जोड़ो,
मानवता के अमित-कल्प-व्यापी विकास की।
तुम आये इसलिए कि भव्य अतीत मनुज का
वर्तमान अथवा भविष्य से छूट न जाये।

तुम आये यह भेद मनुष्यों को समझाने,
धर्म और विज्ञान परस्पर-शत्रु नहीं हैं,
और न इनमें एक सत्य है, अगर मृषा है।
दो सौ वर्षों से मनुष्य ने अर्जन जिसका किया,
ज्ञान यह बहुत श्रेष्ठ है, और श्रेष्ठ है
वह धारा भी, जो अनन्त सदियों से अविरल,
जन-मन में भावना-रूप बहती आयी है।
निरा ज्ञान हिमशिला, निरी बाष्प है,
नर का जीवन-स्रोत शुभ्र पानीय तरल है।
गलने दो हिम के कठोर पिण्डों को मन में
और बाष्प को सलिल-रूपता में ढलने दो।
तन का सौरभ व्यर्थ अगर मन के आँगन में
तुलसी का तरु नहीं, नहीं शुचि गंध अगुरु की।
वायुयान पर चढ़ कर तुम उड़ चले कहाँ को ?
मानव का गृह तो मानव से दूर नहीं है।

—रामधारी सिंह 'दिनकर'

[भूदान-यज्ञ २५-१०-६३ में प्रकाशित]

आखिर क्यों ?

मेरा क्या अपराध है ?
ज़हर उगलने वाले उगलते हैं
स्पर्धा का, क्रोध का, द्वेष का,
और—आंतें मेरी भुनी जाती हैं।
आग लगाने वाले लगा जाते हैं—
नफ़रत की, हिंसा की, बर्बरता की,
और—कलेजा मेरा झुलसता है।
क्यों ? आखिर क्यों ?
मेरा क्या क़सूर है ?
जवान मरते हैं, मारे जाते हैं—
वियतनाम, इन्दोनेशिया, हिन्दोस्तां में
और—कोख मेरी सूनी पड़ती है।
आँसू बहते हैं बच्चों के, बूढ़ों के, अपाहिजों के,
और—खून मेरी धमनियों में सूखता है।
क्यों ? आखिर क्यों ?
भूलता है मानव सत्य, प्रेम, करुणा,
और—हया से झुकता मेरा माथा है।

[मौन के अनुनाद]

—बिमला

सर्वोदय ही बुद्ध का सन्देश है—"बहुजनहिताय बहुजन-सुखाय"—इसमें 'बहु' शब्द संख्यावाचक नहीं है। इसका संकेत 'सर्वजनहिताय' की ओर है। ऐसा अर्थ नहीं होता तो अहिंसा का विचार सामने आता ही नहीं।

"लोकानुकम्पाये" में अनुकम्पा शब्द है।

अनु = पीछे-पीछे, साथ (with, together) सहानुभूति + करुणा। जिस समाज में वर्गभेद रहेंगे, वहाँ अनुकम्पा के लिए अवकाश न। वेदान्त का अद्वैत + बुद्ध की अहिंसा = आज का युगधर्म बनता है

[भूदानयज्ञ–२८-१२-५६ से] —विमला

© विमला ठकार/विमल-प्रकाशन-ट्रस्ट
शिवकुटी, आबू पर्वत, 307501. (राज.)

सङ्कलित संस्करण प्रथम, १९९१
देय—५ रु० मात्र

मुद्रक—श्री महावीर प्रेस, वाराणसी